कविग्राम

वर्ष 01, अंक 02, फरवरी 2024

ऋतुराज आया है।

कविग्राम फाउण्डेशन

कविग्राम

वर्ष 01, अंक 02, फरवरी 2024

प्रधान सम्पादक
चिराग़ जैन

सह-सम्पादक
मनीषा शुक्ला

प्रकाशन स्थल
दरियागंज, नई दिल्ली

प्रकाशक
कविग्राम फाउण्डेशन

साज-सज्जा
andaaj CREATIVE

उपरोक्त सभी पद मानद तथा अवैतनिक हैं। 'कविग्राम' साहित्य को समर्पित एक अव्यावसायिक पत्रिका है। इसका वितरण सोशल मीडिया के माध्यम से किया जाता है। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के प्रतिलिप्याधिकार उन रचनाओं के लेखकों के पास सुरक्षित हैं। किन्तु समग्र रूप में इस अंक का पुनर्प्रकाशन करने के लिए 'कविग्राम फाउण्डेशन' अथवा प्रधान सम्पादक की लिखित अनुमति आवश्यक है।

मूल्य : निःशुल्क

kavigram.com

thekavigram

facebook.com/kavigram

youtube.com/c/KaviGram

8090904560

TheKavigram@gmail.com

thekavigram

कविग्राम से जुड़िये

अनुक्रम

- सम्पादकीय / कविता का मौसम / 04
- आवरण कथा / ऋतुराज आया है / चिराग़ जैन / 05
- वटवृक्ष / वीणावादिनी वर दे / सूर्यकांत त्रिपाठी निराला / 11
- वटवृक्ष / वसंत कहाँ है / रामधारी सिंह दिनकर / 12
- गुलमोहर / दो वरदान / डॉ. सरिता शर्मा / 13
- फुलवारी / सुनो पुकार / डॉ. रुचि चतुर्वेदी / 14
- ग़ालिब की गली / यारों का बसन्ता / नज़ीर अकबराबादी / 15
- ग़ालिब की गली / बाग़ बनाने का मन है / चराग़ शर्मा / 17
- हास्य-विनोद / कवियों का कैसा हो वसन्त / बेढब बनारसी / 18
- उत्साह / जलियाँवाला बाग़ में वसन्त / सुभद्राकुमारी चौहान / 19
- उत्साह / तब समझूंगा आया वसन्त / शिवमंगल सिंह सुमन / 20
- लोक-लालित्य / बारहमासो मोरी छैला / राजगोपाल सिंह / 21
- कवि-सम्मेलन संग्रहालय / 22
- धारदार / बसन्त की बातें और बातों का बसन्त / जैबेन्द्र कर्दम / 23
- धारदार / अपडेट होकर आओ बसन्त / सुनील व्यास / 25
- हिन्दी हितैषी / 26
- श्रद्धांजलि / मुनव्वर राणा / 27

सम्पादक की पाती

प्रिय पाठको!

पत्रिका प्रकाशन जितना श्रमसाध्य कार्य है, उतना ही मनसाध्य ही। मन की ख़ुराक़ है संवाद। यदि हमारे पाठक हमसे संवाद करेंगे। पत्रिका पढ़ने के उपरांत अपनी खट्टी-मीठी प्रतिक्रियाओं से अवगत कराएंगे तो हमारा मन ऊर्जावान रहेगा। हमें आपकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी। प्रतिक्रिया कविग्राम के व्हाट्सएप +91 8090904560 पर प्रेषित करें।

-सम्पादक

कविता का मौसम...

मौसम का सम्बन्ध मन से है। मन प्रसन्न हो, तो पतझड़ के सूखे पत्तों में भी संगीत की अनुभूति होने लगती है और मन विकल हो, तो खिले हुए पलाश भी आँखों को झुलसाने लगते हैं। कालिदास का विरही यक्ष मेघ को भी दूत समझ बैठता है और रत्नावली से मिलने के उद्वेग में तुलसी साँप को भी रस्सी समझकर चढ़ जाते हैं।

...तो क्या ऋतुओं के चित्रण के सब प्रसंग कोरा मनविलास है? क्या इनमें कोई सार्थकता नहीं है? वास्तव में मौसम मनोदशा की दिशा निर्धारित नहीं कर सकता किन्तु उसकी गति को घटा-बढ़ा ज़रूर सकता है। मन विरही हो तो वसन्त का मौसम विरह की पीड़ा को बढ़ा देता है जबकि ग्रीष्म ऋतु से तप्त सृष्टि के सम्मुख निजी पीड़ा कम जान पड़ती है। ठीक ऐसे ही ज्यों ग्रीष्म ऋतु के ताप से प्रेम का सागर सूख तो नहीं पाता किन्तु वैसा छलछला भी नहीं पाता, जैसा वसन्त में छलछलाता है।

यही कारण है कि किसी भी रस का कवि अपनी रचनाओं को ऋतुओं के बिम्ब से न तो अछूता रख सकता है, न ही ऐसा प्रयास करता है। मौसम, प्रकृति से लेकर काव्य तक में स्वतः घटित होता है। अभाव का चित्रण करनेवाले रचनाकार को वर्षा ऋतु में सड़क पर भीगते मनुष्य दिखाई देते हैं तो शृंगार रस का कवि बारिश में भीगी हुई नायिका को रस-निष्पत्ति का माध्यम बना लेता है। शीत ऋतु में वीर रस का कवि हिमालय पर तैनात सिपाहियों के शौर्य को प्रणाम करता है तो करुण रस की कविता अस्थिभेदक हवाओं में ठिठुरते बेघरों की पीड़ा को अभिव्यक्त करती है।

मौसम कविता के लिये अपनी प्रकृति नहीं बदलता किन्तु कविता प्रकृति के अनुरूप अपना मौसम अवश्य बदल सकती है। मौसम, ईश्वर द्वारा रची गई कविता है और कविता, मानव द्वारा रचा गया मौसम है। हाँ, एक बात इन दोनों में समान है कि इन दोनों की ही सर्जना में सहजता अपरिहार्य है। नवाज़ देवबन्दी साहब के दो मिसरों के साथ बात पूरी करता हूँ-

मौसमों की साज़िश से पेड़ फल तो देते हैं
साज़िशों के फल लेकिन ज़ायक़ा नहीं देते

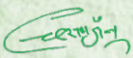

ऋतुराज आया है

चिराग़ जैन

वसन्त अर्थात् शीतलहर के प्रकोप से त्रस्त सृष्टि पर दुलार की ऊष्मा का फिरता-सा हाथ। वसन्त अर्थात् गुनगुनी धूप के स्पर्श से प्रकृति सुन्दरी का खिल उठना। वसन्त अर्थात् नीरस ठूठ में भी मादक हवा के संसर्ग से रस उत्पन्न हो जाना। वसन्त अर्थात् सुन्दर का और सुन्दर हो उठना। वसन्त अर्थात् असुन्दर का भी सुन्दर हो जाना।

यही कारण है कि वसन्त की संज्ञा एक मौसम मात्र तक सीमित न रहकर एक मनोदशा की द्योतक बन गई है। प्रेम और पावनता के ताने-बाने से बुनी वासन्ती चूनर पर उल्लास और उत्सव के सितारे स्वतः ही सज उठते हैं।

वसन्त ऋतु में प्रेम, शृंगार, सौंदर्य, सृजन और सत्व का ऐसा प्रसार हो जाता है कि किसी नकारात्मकता के लिए स्थान ही नहीं बचता। हर डाली हरिया उठती है। हर बिरवा पल्लवित हो जाता है। क्यारियाँ सहस्त्रों फूलों के आभूषण पहनकर बगीचे में टहलने लगती हैं। लताएँ इठलाते हुए जब किसी तने की उंगली थाम लेती हैं तो उस स्पर्श से पूरे वृक्ष की बाँछें खिल जाती हैं। सारी सृष्टि पीताम्बरा हो जाती है। कदाचित इसी कारण श्रीकृष्ण ने गीता में कहा 'ऋतुनां कुसुमाकरः' अर्थात् ऋतुओं में मैं वसन्त हूँ।

ऋतु वर्णन में वसन्त का काव्य मन को दिव्य प्रेम के रंग से रंग देता है। संस्कृत में वाल्मीकि और कालिदास से लेकर प्राकृत में स्वयम्भू तक वसन्त बार-बार कविताओं में उतरा है। हिन्दी का रीतिकाल तो वसन्त से भरा ही पड़ा है। आज भी गाहे-बगाहे हिन्दी की कविताओं में वासन्ती छींटे दिख जाते हैं।

चूँकि वसन्त पंचमी सरस्वती पूजन का पर्व भी है, इसलिए वसन्त ऋतु में सरस्वती-पुत्रों पर वाग्देवी की पर्याप्त कृपा भी होती है। खिलखिलाती हुई दुनिया को देखकर कविमन में खिलखिलाती हुई कविताओं की कलियाँ भी ख़ूब चटकती हैं।

जायसी ने पद्मावत में वसन्त के लिए लिखा:

कुसुम हार और परिमल बासू, मलयागिरि छिरका कबिलासू
सौंर सुपेती फूलन डासी, धनि औ कन्त मिले सुखबासी
पिउ सँजोग धनि जोबन बारी, भौंर पुहुप संग करहिं धमारी
जिन्ह घर कन्ता ऋतु भली, आव वसन्त जो नित्त
सुख भरि आवहिं देवहरै, दुःख न जानै कित्त

पद्माकर ने माधुरी में वसन्त का वर्णन करते हुए अनेक छन्द रचे, जिनमें से यह कवित्त सर्वाधिक लोकप्रिय है:

कूलन में, केलि में, कछारन में, कुंजन में
क्यारिन में, कलित-कलीन किलकन्त है
कहै पद्माकर परागन में पौनहु में
पातन में, पिक में, पलासन पगन्त है
द्वारे में, दिसान में, दुनी में, देस-देसन में
देखौ दीप-दीपन में दीपत दिगन्त है
बीथिन में, ब्रज में, नबेलिन में, बेलिन में,
बनन में, बागन में बगर्यो बसन्त है

इसी प्रकार बिहारी का यह दोहा भी ऋतुवर्णन का श्रेष्ठ उदाहरण है:

छकि रसाल सौरभ सने, मधुर माधवी गन्ध।
ठौर-ठौर झूमत झपत, भौंर झौंर मधु अन्ध।।

देव वसन्त का मानवीकरण करते हुए लिखते हैं:

डारि द्रुम-पालन बिछौना नव-पल्लव के
सुमन झिंगूला सोहै तन छवि भारि दै
पवन झुलावै केकी-कीर बहरावे देव
कोयल हलावे-हुलसावे कर तारि दै
पूरित पराग सौं उतारौं करै राई-नोन
कंजकली नायिका लतानि सिर-सारि दै
मदन-महीपजू को बालक वसन्त ताहि
प्रातहि जगावत गुलाब चटकारि दै

महाकवि सेनापति जैसा शौर्य का उपासक कवि भी वसन्त ऋतु के सौन्दर्य का वर्णन करने में पीछे न रह सके, और वसन्त के केसरिया सौंदर्य से प्रभावित होकर उन्होंने यह कवित्त रच दिया:

बरन-बरन तरु फूले उपवन वन, सोई चतुरंग संग दल लहियतु है
बन्दी जिमि बोलत विरद वीर कोकिल है, गुंजत मधुप गान गुन गहियतु है
आवे आसपास पुहुपन की सुवास सोई, सोने के सुगंध माझ सने रहियतु है
सोभा को समाज सेनापति सुख साज आजु, आवत वसन्त ऋतुराज कहियतु है

मौसम का प्रभाव प्रवृत्तियों की सीमा के परे होता है। बाबा नागार्जुन का औघड़ कवि वसन्त ऋतु में प्रकृति के विलास की साक्षी बनकर लिखता है:

रंग-बिरंगी खिली-अधखिली
किसिम-किसिम की गन्धों वाली स्वादों वाली ये मंजरियाँ
तरुण आम की डाल-डाल, टहनी-टहनी पर
झूम रही हैं, चूम रही हैं!
कुसुमाकर को, ऋतुओं के राजाधिराज को,
इनकी इठलाहट अर्पित है
छुई-मुई की लोच-लाज को।
तरुण आम की ये मंजरियाँ
उद्भित जग की ये किन्नरियाँ
अपने ही कोमल-कच्चे वृन्तों की मनहर सन्धि भंगिमा
अनुपल इनमें भरती जाती
ललित लास्य की लोल लहरियाँ
तरुण आम की ये मंजरियाँ।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना वसन्त को किसी महन्त का रूपक सिद्ध करते हुए कहते बैठे:

श्रद्धानत तरुओं की अंजलि से झरे पात
कोंपल के मुन्दे नयन थर-थर-थर पुलक गात
अगरु धूम लिए घूम रहे सुमन दिग-दिगन्त
आए महन्त वसन्त
खड़-खड़ खड़ताल बजा नाच रही बिसुध हवा
डाल-डाल अलि पिक के गायन का बन्धा समा
तरु-तरु की ध्वजा उठी जय-जय का है न अन्त
आए महन्त वसन्त

केदारनाथ अग्रवाल ने कामदेव के पंचम शर के प्रभाव से मादक हुई वसन्ती हवा का वर्णन इस तरह किया:

चढ़ी पेड़ महुआ, थपाथप मचाया
गिरी धम्म से फिर, चढ़ी आम ऊपर
उसे भी झकोरा, किया कान में 'कू'
उतरकर भगी मैं, हरे खेत पहुँची -
वहाँ, गेहुँओं में लहर खूब मारी।
पहर दो पहर क्या, अनेकों पहर तक
इसी में रही मैं! खड़ी देख अलसी,
लिए शीश कलसी, मुझे खूब सूझी -

हिलाया-झुलाया गिरी पर न कलसी!
इसी हार को पा, हिलाई न सरसों, झुलाई न सरसों,
हवा हूँ, हवा मैं बसंती हवा हूँ!
मुझे देखते ही अरहरी लजाई,
मनाया-बनाया, न मानी, न मानी
उसे भी न छोड़ा - पथिक आ रहा था,
उसी पर ढकेला, हँसी जोर से मैं,
हँसी सब दिशाएँ, हँसे लहलहाते
हरे खेत सारे, हँसी चमचमाती
भरी धूप प्यारी, बसंती हवा में हँसी सृष्टि सारी!
हवा हूँ, हवा मैं बसंती हवा हूँ!

भारतेन्दु ने बिरहिन के वसन्त का दोहा लिखा-

परम सुहावन से भए सबै बिरिछ बन बाग।
तृबिध पवन लहरत चलत दहकावत उर आग।

गिरिजाकुमार माथुर ने वसन्त की कविता में केसर के रंगों में रंगे हुए वनों का वर्णन किया तो महीयसी महादेवी ने अपने विरह को वसन्त का रंग देते हुए लिखा- 'छोड़ कोमल फूल का घर, ढूँढ़ती हूँ कुंज निर्झर। पूछती हूँ नभ धरा से- क्या नहीं ऋतुराज आया?' अज्ञेय ने वसन्त में असुन्दर के भी सुन्दर हो उठने की बात कही कि 'पीत वसन दमक उठे तिरस्कृत बबूल, अरे! ऋतुराज आ गया।' सोहनलाल द्विवेदी ने 'आया वसन्त आया वसन्त, छाई जग में शोभा अनन्त' जैसा सहज गीत लिखा तो प्रकृति के चतुर चितेरे कवि सुमित्रानन्दन पन्त ने 'कलि के पलकों में मिलन स्वप्न, अलि के अन्तर में प्रणय गान, लेकर आया प्रेमी वसन्त, आकुल जड़-चेतन स्नेह प्राण।' लिखकर वसन्त की संजीवनी शक्ति का प्रमाण प्रस्तुत कर दिया।

निराला ने 'छवि विभावरी' और 'भरा हर्ष वन के मन नवोत्कर्ष छाया, सखि वसन्त आया' जैसा अमर गीत रचा तो सुभद्राकुमारी चौहान ने 'फूली सरसों ने दिया रंग, मधु लेकर आ पहुँचा अनंग, वधु वसुधा पुलकित अंग-अंग, है वीर वेश में किन्तु कन्त, वीरों का कैसा हो वसन्त' लिखकर शौर्यबोध की याद दिलाई है। बाद में सुभद्रा जी की इसी कविता का प्रतिगीत लिखकर बेढब बनारसी ने हास्यरस को भी वासन्ती रंग में रंग दिया। गोपालदास नीरज ने प्रणय के गीत में वसन्त ऋतु का अवलम्बन थाम कर प्रणय निवेदन किया है-

धूप बिछाए फूल-बिछौना
बगिया पहने चांदी-सोना
कलियाँ फेंके जादू-टोना
महक उठे सब पात, हवन की बात न करना!
आज बसन्त की रात, गमन की बात न करना!

माखनलाल चतुर्वेदी ने वसन्त को 'मनमाना' कहते हुए लिखा- 'फैल गया है पर्वत-शिखरों तक बसन्त मनमाना, पत्ती, कली, फूल, डालों में दीख रहा मस्ताना।'

दिनकर ने वसन्त की तुलना वर्षा ऋतु से करते हुए कविता लिखी-

राजा वसन्त वर्षा ऋतुओं की रानी
लेकिन दोनों की कितनी भिन्न कहानी
राजा के मुख में हँसी, कण्ठ में माला
रानी का अन्तर द्रवित दृगों में पानी

भगवतीचरण वर्मा ने लिखा-

है आज धूप में नई चमक
मन में है नई उमंग आज
जिससे मालूम यही दुनिया
कुछ नई-नई सी होती है
है आस नई, अभिलास नई
नवजीवन की रसधार नई
अन्तर को आज भिगोती है!
तुम नई स्फूर्ति इस तन को दो
तुम नई चेतना मन को दो
तुम नया ज्ञान जीवन को दो
ऋतुराज तुम्हारा अभिनन्दन!

गोपाल सिंह नेपाली रंगों का प्राकृतिक सौन्दर्य देखकर कृत्रिम रंगों को उलाहना देते हुए कहते हैं- 'रग-रग में इतना रंग भरा, रंगीन चुनरिया झूठी है।' रामेश्वर शुक्ल अंचल ने वसन्त में कवि की मनोदशा का चित्र उकेरते हुए लिखा-

नील पुलकों में तरंगित चित्रलेखा बन गई छवि
दूर तक सहकार श्यामल रेणुका से घिर चला कवि
लो प्रखर सन सन सुरभि से नागकेशर रूप विह्वल
बज उठी किंकिणि मधुप रव से हुई वनबाल चंचल
आज है मधुमास रे मन!

डॉ. कुँअर बेचैन ने जब वसन्त को निमंत्रण दिया तो उनके भीतर का पुलक उनके शब्दों में उतर आया- 'बहुत दिनों के बाद चिरैया बोली है, ओ वासन्ती पवन हमारे घर आना।' काव्य की वाटिका में वसन्त की ये बयार बहती हुई वर्तमान तक भी चली आई है। वसन्त से जुड़ी पौराणिक कथा का संदर्भ लेते हुए धर्मेन्द्र सोलंकी गीत रचते हैं - 'कामदेव ने दसों दिशा में इत्र लुटाया है, रति की गोदी में बसंत लल्ला इठलाया है।'

श्वेता सिंह ने सुख की अनुभूति को वसन्त के आगमन का इंगित मानते हुए गीत लिखा-

भाव सोये हुए कुनमुनाने लगे
इन्द्रधनुषी हृदय का गगन हो गया
प्रीति की कोंपलें फूटने लग गयीं
देख ऋतुराज का आगमन हो गया

ज्ञानप्रकाश आकुल ने जब वसन्त पर लेखनी चलाई तो अभावों की अपेक्षाओं को इस प्रकार शब्द मिल गये-

ओ वसंत! आओ, स्वागत है।
पिछली बारिश जिन पेड़ों पर
बादल, बिजली गिरा गये थे,
जो बेचारे ठूँठ हो चुके
क्या उन पर कोयल बोलेगी?

एक अन्य गीत में ज्ञानप्रकाश आकुल विद्रूपताओं से त्रस्त प्रकृति का प्रतीक लेकर वसन्त की दशा का वर्णन करते हैं-

शीश झुकाए सहमे-सहमे सब पलास के फूल
अट्टहास की मुद्रा में हैं काँटे लिए बबूल
कोयल के हिस्से की ख़ुश्बू लूट रहे हैं बाज
इधर उधर ठूँठों पर बैठा सिसक रहा ऋतुराज

उधर राजीव राज वसन्त की मूल छवि पर आधारित गीत लिखते हैं- 'लाज शरम सब छोड़ उड़ रहे पंछी पंख पसारे। मौसम करे इशारे, खोल दो बन्द किवारे।' एक गीत में अशोक भाटी वसन्त के पीले पत्ते से संवाद करते हुए ढांढ़स बंधाते हैं -

छद्म पुलिन्दे मिलें लाख
पर बिल्कुल भी इतराना मत
ओ वसन्त के पीले पत्ते
मौसम से घबराना मत

इन सबके इतर भी वसन्त ऋतु के बिम्ब और प्रतीक अनेक कवियों को आकृष्ट करते रहे हैं। मौसम की मनमोहक छटा देखकर बिरवे ही नहीं, मन भी पल्लवित होने लगता है। मदमाती हवाओं के स्पर्श से सृष्टि ही नहीं अभिव्यक्ति भी इठलाने लगती है। कोयलिया की कूक से आम ही नहीं कभी-कभी शब्द भी बौराने लगते हैं। प्रकृति के इस मदनोत्सव का सृजन पर सदैव सकारात्मक प्रभाव पड़ा है यही कारण है इन वासन्ती रचनाओं का पराग सृजन को सरस करता रहता है।

वीणावादिनी वर दे!

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

वर दे!
वीणावादिनी वर दे!
प्रिय स्वतन्त्र-रव
अमृत-मन्त्र नव
भारत में भर दे!

काट अन्ध-उर के बन्धन-स्तर
बहा जननि ज्योतिर्मय-निर्झर
कलुष-भेद-तम हर, प्रकाश भर
जगमग जग कर दे!
वर दे, वीणावादिनी वर दे!

नवगति, नवलय, ताल-छन्द नव
नवल कण्ठ, नव जलद मन्द्ररव
नव नभ के नव विहग-वृन्द को
नव पर, नव स्वर दे!
वर दे, वीणावादिनी वर दे!

वसंत कहाँ है

रामधारी सिंह 'दिनकर'

हाँ, वसंत की सरस घड़ी है
जी करता, मैं भी कुछ गाऊँ;
कवि हूँ, आज प्रकृति-पूजन में
निज कविता के दीप जलाऊँ।
क्या गाऊँ? सतलज रोती है
हाय! खिली बेलियाँ किनारे।
भूल गए ऋतुपति, बहते हैं
यहाँ रुधिर के दिव्य पनारे।
बहनें चीख़ रहीं रावी-तट
बिलख रहे बच्चे बेचारे,
फूल-फूल से पूछ रहे हैं
कब लौटेंगे पिता हमारे?
उफ़, वसंत या मदन-बाण है?
वन-वन रूप-ज्वार आया है।
सिहर रही वसुधा रह-रहकर
यौवन में उभार आया है।
कसक रही सुंदरी- 'आज
मधु-ऋतु में मेरे कंत कहाँ?'
दूर द्वीप में प्रतिध्वनि उठती
'प्यारी, और वसंत कहाँ?'

दो वरदान!

डॉ. सरिता शर्मा

सुर सन्धान तुम्हीं
गीत विधान तुम्हीं
शुद्ध बुद्धि की तुम ही प्रदाता
नूतन ज्ञान तुम्हीं

अक्षर-अक्षर दीप जलाकर
शब्द-शब्द के सुमन सजाकर
द्वार खड़ी हूँ लिये आरती
मैं तुम्हरी जन्मों की चाकर
दो वरदान तुम्हीं
सुर सन्धान तुम्हीं
गीत विधान तुम्हीं

पुस्तक, वीणा धारे कर में
मातु विराजी मन-मन्दिर में
जल-थल पवन गगन में लय जो
अनहद नाद प्रकृति के स्वर में
गुंजित गान तुम्हीं

सुर सन्धान तुम्हीं
गीत विधान तुम्हीं
शुद्ध बुद्धि की तुम ही प्रदाता
नूतन ज्ञान तुम्हीं ●

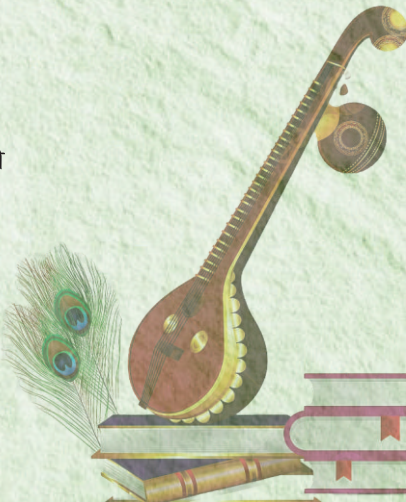

सुनो पुकार

डॉ. रुचि चतुर्वेदी

हे माँ, सुनो पुकार हमारी
महका दो जग की फुलवारी
घेरे नहीं निराशा हमको
दूर करो हे माँ इस तम को
मात प्रतीक्षा करें तुम्हारी

वीणा की झंकार सुना दो
मन के सारे द्वेष मिटा दो
दूर बुराई कर दो सारी
हे माँ, सुनो पुकार हमारी

अब तो आकर दरस दिखा दो
मुझको सरगम सत्य सिखा दो
तुम सारे जग की महतारी
हे माँ, सुनो पुकार हमारी

यारों का बसन्ता

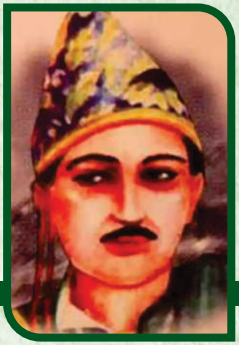

नज़ीर अकबराबादी

जब फूल का सरसों के हुआ आके खिलन्ता
और ऐश की नज़रों से निगाहों का लड़न्ता
हमने भी दिल अपने के तईं करके पुखन्ता
और हँस के कहा यार से ऐ लकड़ भवन्ता
सबकी तो बसन्तें हैं पै यारों का बसन्ता

इक फूल का गेंदों के मंगा यार से बजरा
दस मन का लिया हार गुंधा, आठ का गजरा
जब आँख से सूरज के ढला रात का कजरा
जा यार से मिलकर यह कहा ऐ! मेरे रजरा
सबकी तो बसन्तें हैं पै यारों का बसन्ता

थे अपने गले में तो कई मन के पड़े हार
और यार के गजरे भी थे इक धवन की मिक़दार
आँखों में नशे मय के उबलते थे धुआँधार
जो सामने आता था यही कहते थे ललकार
सबकी तो बसन्तें हैं पै यारों का बसन्ता

पगड़ी में हमारी थे जो गेंदों के कई पेड़
हर झोंक में लगती थी बसन्तों के तईं एड़
साक़ी ने भी मटके से दिया मुँह के तईं भेड़
हर बात में होती थी इसी बात की आ छेड़
सबकी तो बसन्तें हैं पै यारों का बसन्ता

फिर राग बसन्ती का हुआ आन के खटका
धोंसे के बराबर वह लगा बाजने मटका
दिल खेत में सरसों के हर एक फूल से अटका
हर बात में होता था इसी बात का लटका
सबकी तो बसन्तें हैं पै यारों का बसन्ता

जब खेत पे सरसों के दिया जाके कदम गाड़
सब खेत उठा सर के ऊपर रख लिया झंझाड़
महबूब रंगीलों की भी एक साथ लगी झाड़
हर झाड़ से सरसों के भी कहती थी अभी झाड़
सबकी तो बसन्तें हैं पै यारों का बसन्ता

साथ लगा जब तो अ़जब ऐश का दहाड़ा
जिस बाग़ में गेंदों के गये उसको उखाड़ा
देखी कभी सरसों कभी नरगिस को उजाड़ा
कहते थे इसी बात को बन, झाड़, पहाड़ा
सबकी तो बसन्तें हैं पै यारों का बसन्ता

खुश बैठे हैं सब शाहो-वजीर आज अहा हा!
दिल शाद हैं अदना-ओ-फ़क़ीर आज अहा हा!
बुलबुल की निकलती है सफ़ीर, आज अहा हा!
कहता यही फिरता है 'नज़ीर' आज अहा हा!
सबकी तो बसन्तें हैं पै यारों का बसन्ता

महकै लगै दिगन्त तो समझो बसन्त है
बहकै लगै जो सन्त तो समझो बसन्त है
बइसे तो चाहे जऊन महीना हुवै भुला
घर आय जाय कन्त तो समझो बसन्त है

-अशोक ठाठम्बरी

बाग़ बनाने का मन है

चराग़ शर्मा

कफ़न से काफ़ हटाना है, फ़न बनाना है
हमारा काम दुखन को सुख़न बनाना है

फिर उसके बाद का सब काम तितलियों के सुपुर्द
तुम्हें तो बाग़ बनाने का मन बनाना है

ऐसे लब हैं कि जो इरशाद किया जाएगा
एबीसीडी की तरह याद किया जाएगा

हाय ये फूल से चेहरे कि ख़ुदा जानता था
एक दिन कैमरा ईजाद किया जाएगा

याद भूले हुए लोगों को किया जाता है
भूल जाओ कि तुम्हें याद किया जाएगा

तितली की दोस्ती न गुलाबों का शौक़ है
मेरी तरह उसे भी किताबों का शौक़ है

वरना तो नीन्द से भी नहीं कोई ख़ास रब्त
आँखों को सिर्फ़ आपके ख़्वाबों का शौक़ है

हम आशिक़-ए-ग़ज़ल हैं तो मग़रूर क्यों न हों
आख़िर ये शौक़ भी तो नवाबों का शौक़ है

कवियों का कैसा हो वसन्त

बेढब बनारसी

कवि-कवयित्री कहतीं पुकार
कवि-सम्मेलन का मिला तार
शेविंग करते, करती सिंगार
देखो कैसी होती उड़न्त
कवियों का कैसा हो बसन्त

छायावादी नीरव गाये
ब्रजबाला हो, मुग्धा लाये
कविता कानन फिर खिल जाये
फिर कौन साधु, फिर कौन सन्त
कवियों का ऐसा हो बसन्त

कर दो रंग से सबको गीला
केसर मल मुख कर दो पीला
कर सके न कोई कुछ हीला
डूबा सुख-सागर में अनन्त
कवियों का ऐसा हो बसन्त

जलियाँवाला बाग़ में वसन्त

सुभद्राकुमारी चौहान

यहाँ कोकिला नहीं, काग हैं, शोर मचाते
काले-काले कीट, भ्रमर का भ्रम उपजाते
कलियाँ भी अधखिली मिली हैं कंटक कुल से
वे पौधे, व पुष्प शुष्क हैं अथवा झुलसे
परिमल-हीन पराग दाग़-सा बना पड़ा है
हा! यह प्यारा बाग़ ख़ून से सना पड़ा है
ओ, प्यारे ऋतुराज! किन्तु धीरे से आना
यह है शोक-स्थान यहाँ मत शोर मचाना
वायु चले, पर मन्द चाल से उसे चलाना
दुःख की आहें संग उड़ा कर मत ले जाना
कोकिल गावें, किन्तु राग रोने का गावें
भ्रमर करें गुंजार कष्ट की कथा सुनावें
लाना संग में पुष्प, न हों वे अधिक सजीले
हो सुगन्ध भी मन्द, ओस से कुछ-कुछ गीले
किन्तु न तुम उपहार-भाव आ कर दिखलाना
स्मृति में पूजा हेतु यहाँ थोड़े बिखराना
कोमल बालक मरे यहाँ गोली खा-खाकर
कलियाँ उनके लिये गिराना थोड़ी लाकर
आशाओं से भरे हृदय भी छिन्न हुए हैं
अपने प्रिय परिवार देश से भिन्न हुए हैं
कुछ कलियाँ अधखिली यहाँ इसलिए चढ़ाना
करके उनकी याद अश्रु के ओस बहाना
तड़प-तड़प कर वृद्ध मरे हैं गोली खाकर,
शुष्क पुष्प कुछ वहाँ गिरा देना तुम जाकर
यह सब करना, किन्तु यहाँ मत शोर मचाना,
यह है शोक-स्थान बहुत धीरे-से आना!

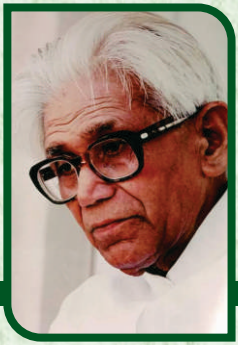

तब समझूंगा आया वसन्त

शिवमंगल सिंह 'सुमन'

जब सजी बसंती बाने में बहनें जौहर गाती होंगी
क़ातिल की तोपें उधर इधर नवयुवकों की छाती होगी
तब समझूंगा आया वसंत।

जब पतझड़ पत्तों-सी विनष्ट बलिदानों की टोली होगी
जब नव विकसित कोंपल कर में कुंकुम होगा, रोली होगी
तब समझूंगा आया वसंत।

युग-युग से पीड़ित मानवता सुख की साँसे भरती होगी
जब अपने होंगे वन उपवन जग अपनी यह धरती होगी
तब समझूंगा आया वसंत।

जब विश्व-प्रेम मतवालों के ख़ूं से पथ पर लाली होगी
जब रक्त बिंदुओं से सिंचित उपवन में हरियाली होगी
तब समझूंगा आया वसंत।

जब सब बंधन कट जाएंगे परवशता की होली होगी
अनुराग अबीर बिखेर रही माँ-बहनों की झोली होगी
तब समझूंगा आया वसंत।

ऑडियो
के लिए क्लिक करें

बारहमासो मोरी छैला

राजगोपाल सिंह

पर्वतों की छाँव में
झरनों के गाँव में
किरणों की डोर ढलती साँझ को है माप रही
पर्वत की ओट कहीं नीमा अलाप रही
बारहमासो मोरी छैला, बेड्यू पाको मोरी छैला

फूल्या बुरांस चैत महक उठी फ्यूलड़ी
पिऊ-पिऊ पुकारती बिरहन म्यूलड़ी
सूनी-सूनी आँखों से राहों को ताक रही
पर्वत की ओट कहीं नीमा अलाप रही
बारहमासो मोरी छैला, बेड्यू पाको मोरी छैला

आड़ुओं की गन्ध देह में अमीय घोल रही
कुमुदिनी मुन्दी हुई पाखुरियाँ खोल रही
सुधियों में खोई-खोई भेड़ों को हाँक रही
पर्वत की ओट कहीं नीमा अलाप रही
बारहमासो मोरी छैला, बेड्यू पाको मोरी छैला

पर्वतों की छाँव में, झरनों के गाँव में

यह स्तम्भ कवि-सम्मेलन के दस्तावेज़ीकरण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रयास है। कवि-सम्मेलन से जुड़े पत्र, चित्र, पत्रक, कतरनें तथा अन्यान्य सामग्री को सहेजकर, पाठकों तक पहुँचाना हमारा उद्देश्य भी है और कर्त्तव्य भी।

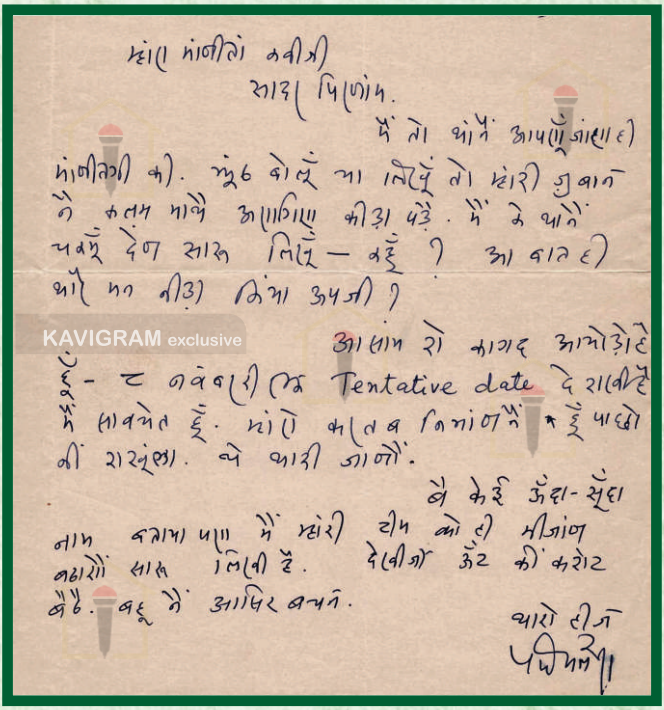

श्री अल्हड़ बीकानेरी को लिखा गया यह पत्र राजस्थान के सिद्धहस्त कवि डॉ. विमलेश राजस्थानी का है। पत्र में किसी आयोजन से संबंधित चर्चा है, किन्तु मारवाड़ी भाषा का यह पत्र सिद्ध करता है कि कवियों के बीच व्यापार और व्यवहार सब कुछ सरस होता है। पत्र की अवधि ज्ञात नहीं है।

हमें यह दुर्लभ पत्र श्री अल्हड़ बीकानेरी जी के परिवार के सौजन्य से प्राप्त हुआ है।

बसन्त की बातें और बातों का बसन्त

जैनेन्द्र कर्दम

सबसे पहले आप सबको बसंत की बधाई!

यह बधाई इसलिए महत्वपूर्ण है क्यूँकि यही वो महीना है जब जीव-जंतुओं और प्रकृति को आवाज़ मिली। एक-दूसरे से संवाद बना और हम समझ पाए कि कोई क्या कह रहा है। वैसे आजकल ऐसा होता नहीं है कि जो कहा जा रहा हो वैसा ही हो फिर भी देवी सरस्वती ने बिना आवाज़ की प्रकृति को सुर, लय और ताल प्रदान कर और सुन्दर बना दिया।

देवी सरस्वती ने बसन्त को बसन्त बना दिया वरना सोचिए, कितना सूना-सूना होता। अगर आवाज़ न होती या प्रकृति को रंग न मिलते तो कितना वैभवहीन संसार होता। क्या सुन पाते हम संसद का शोर और हमारे नेताओं के बायदों से भरे हुए भाषण? देवी सरस्वती को एक काम और कर देना चाहिए था, कि आदमी के मुँह से सच के सिवाय कुछ न निकलता। यदि ऐसा होता तो हमारे कितने ही माननीय आज असम्मान के पात्र बन चुके होते, क्योंकि उनके द्वारा भरे गये वचन आज तक तो किसी की ज़िन्दगी में वसन्त ला नहीं पाये। सरस्वती ने मन और वचन के बीच पारदर्शिता की व्यवस्था कर दी होती तो पूरी सियासत अपनी दशा पर भौंचक्की हो गयी होती। सम्बन्धों के बीच का ढकोसला और बनावटी अपनेपन की आदतों पर पलीता लग गया होता। ईश्वर और राष्ट्र से लेकर, परिवार तक के सामने ढोंग का चोला पहनकर महान बनने वाले लोगों से दुनिया बच गई होती।

सबको आवाज़ मिली, फिर चाहे वो मीडिया हो, न्यायालय हो, सरकार हो या अधिकारी। सबको उल्लसित होकर बसन्त का महीना सेलीब्रेट करना चाहिए क्यूँकि यदि उन्हें आवाज़ न मिलती तो जनता की आवाज़ कैसे दबती। वैसे आवाज़ तो जनता को भी मिली पर उसकी आवाज़ का ज़ोर इन सबकी

आवाज़ों के शोर में कहीं दबकर रह गया और वो चाहते हुए भी बसन्त सेलीब्रेट नहीं कर पाती क्योंकि इस शबरी के घर तो कभी राम आए ही नहीं बसंत में।

ख़ैर छोड़िए, आवाज़ मिलना भर क़ाफ़ी नहीं है, जब तक सुनने वाले कान न हों। यदि कोई न सुने तो आप चिल्लाते रहिए और आपकी आवाज़ बस आपके कानों को ही सुनाई देगी, मनाते रहिए अपना बसन्त आप ख़ुद ही और ख़ुश होते रहिए कि आपको आवाज़ मिल गई। चीख़ और चीत्कार यदि सही कानों तक पहुँचती तो बलात्कार जैसी घटनाएँ कबकी रुक चुकी होतीं। धर्म की आवाज़ों को सही कान मिल जाते तो ये दंगे कहाँ होते। भूखे पेट की आवाज़ सही कानों तक पहुँचती। आज लोग भूखे न सोते। किसानों की आवाज़ सही कानों तक पहुँचती तो वे आत्महत्याएँ न करते। बसन्त ने इन सबको आवाज़ तो दे दी पर सुननेवाले कान नहीं दिये।

अहंकार के बादलों में बसन्त का कोई स्थान नहीं है। कितने अच्छे लगते हो सरसों के खेत में खड़ी सरसों के पीले फूल और उसमें लहलहाती हरियाली। लेकिन आज बसन्त ठण्ड में ठिठुर रहा है और राजनीति उसके सारे रंग छीनने पर आमादा है। जब प्रकृति को सौंदर्य से भरने वाले किसान सड़क पर आ जाएँ तो बसन्त भी आवे से ठिठकता है।

सच में कहा जाये तो यह महीना लोकतन्त्र का असली महीना है। सोचिए! अगर 'स्पीच' ही न होती तो फ्रीडम ऑफ स्पीच' कहाँ से होती। इसके लिए देवी सरस्वती का आभार प्रकट कर अपनी लेखनी की आवाज़ को बुलन्द कीजिए।

जोबन पर इन दिनों है बहारे-नशाते-बाग़
लेता है फूल भर के यहाँ झोलियाँ बसन्त
चेहरे तमाम ज़र्द हो दौलत के रंग से
कोठी में हो गया है सरापा अयाँ बसन्त

मुनीर शिकोहाबादी

अपडेट होकर आओ वसन्त!

सुनील व्यास

वसन्तः रमणीयः ऋतुः अस्ति। इदानीम् शीतकालस्य भीषणा शीतलता न भवति। मन्दं-मन्दं वायुः चलति। विहंगाः कूजन्ति। विविधैः कुसुमैः वृक्षाः आच्छादिताः भवन्ति। कुसुमेषु भ्रमराः गुञ्जन्ति। धान्येन धरणी परिपूर्णा भवति। कृषकाः प्रसन्नाः दृश्यन्ते। कोकिलाः मधुरम् गायन्ति। आम्रेषु मञ्जर्यः दृश्यन्ते। मञ्जरीभ्यः मधु स्रवति।

जिसने भी यह अनुच्छेद लिखा है, पता नहीं क्या सोचकर लिखा है। वैसे संस्कृत में है, तो सोचकर ही लिखा होगा। कृषकाः प्रसन्ना दृश्यन्ते। यह गहरी सोच है। शायद उसने दसवीं मंज़िल पर रहनेवाले किलर जीन्स पहने किसान के बारे में लिखा होगा, इसीलिये प्रसन्न लिख दिया। दूर गाँव-खेड़े में इस सर्दी की रात में हाथों से ठण्डे-ठण्डे पानी को मोड़ते हुए और बिना चप्पल पहने किसान को नहीं देखा, देखना भी नहीं था। वरना अनुच्छेद कैसे लिखा जाता। वातानुकूलित कमरे की मन्द-मन्द समीर की तुलना शीतलहर से भी तो करनी थी। आ़खिर वसन्त जो आ रहा है, स्पीड में। पहले वसन्त को कवि ख़ुद बुलाता था। आओ ऋतुराज, कोयलिया इन्तज़ार कर रही है, सभी स्वरों को गले में लिये, तुम्हारे स्वागत को।

परसाई जी का वसन्त तो अब है नहीं, जो द्वार खटखटाने लग जाता था। अब अ़ख़बार के किसी कोने में छिपकर आता है। उसे पता है कि कोयलिया अब नहीं गायेगी, बर्ड फ्लू जो चल रहा है। पीली चुनरी का ख़र्चा अब उसे महंगा पड़ रहा है। नई नीति कानून के कारण कमज़ोरी के कारण पीली हो गई आँखों से ही वसन्त आ गया। लेकिन है तो ऋतुओं का राजा, इसलिये मन की बात नहीं कही। बस आँखों ही आँखों में बता दिया कि भैया आ गया हूँ। कोई बाबा नागार्जुन बन जाओ, और फिर से लिख दो-

तरुण आम की
डाल-डाल, टहनी-टहनी पर
झूम रही है,
चूम रही है कुसुमाकर को
ऋतुओं के राजाधिराज को
इनकी इठलाहट अर्पित है
छुई-मुई की
लोच-लाज को

वसन्त कितना भोला है। उसे पता हीं नहीं कि ये सब अब आउटडेटिड है। कविता की जगह बादशाहों ने रैप शुरू कर दिये हो। आओ वसन्त, उस शीतल मालकोस की मस्ती से निकलो! फटी बिवाइयों से डरो मत! नाचो रैप पर। नहीं तो तुम्हें कोई पहचानेगा नहीं। अब हर मौसम में हर मौसम की सब्ज़ी और फूल मिलते हो। इसलिये अपने आप पर ज़्यादा घमण्ड मत करना! शहरों में तो तुम कभी थे भी नहीं। अब गाँवों में थोड़े बचे हो, तो आओ! तुम्हारा स्वागत गाँव के बच्चे अपने सरकारी मास्टर जी के साथ आधे घण्टे में उत्सव में करेंगे, फिर छुट्टी। तुम भी फ्री और मास्टर जी भी फ्री।

तो हे वसन्त ऋतु! थोड़ा अपडेट होकर आना। अब संस्कृत की प्रतीक्षा में मत रहना। आना, मटमैली धोती पहने अपने उस मजदूर किसान के लिये; आना, घूंघट में सिमटी नवविवाहिताओं के लिये; आना, उन चेहरों के लिये जिनकी झुर्रियों में तुम्हारी जवानी छिपी है; आना, उन टेसू के फूलों के लिये जो सिर्फ़ और सिर्फ़ तुम्हारी आहट सुनने के लिये जंगल में अकेले खड़े हैं!

आओ वसन्त! आओ वसन्त!

हिंदी हितैषी

वसन्त अथवा बसन्त?

वसन्त शब्द की सही वर्तनी 'वसन्त' है किन्तु सामान्य प्रचलन में इसे 'बसन्त' भी कहा जाता है। लोक-साहित्य में इस शब्द को अधिकांश स्थानों पर बसन्त ही लिखा गया है। इसलिए हमने इस अंक में दोनों रूप प्रयुक्त किये हैं। मूल शब्द को लेकर पाठक भ्रमित न हों इसलिए यह स्पष्टीकरण दिया जा रहा है कि शुद्ध वर्तनी 'वसन्त' है।

श्रद्धांजलि

मुनव्वर राणा

जन्म : 26 नवम्बर 1952

निधन : 14 जनवरी 2024

मुझको गहराई की मिट्टी में उतर जाना है
ज़िन्दगी बांध ले सामान-ए-सफ़र जाना है
ज़िन्दगी ताश के पत्तों की तरह है मेरी
और पत्तों को बहर-हाल बिखर जाना है

मेरे भारत की भाषा

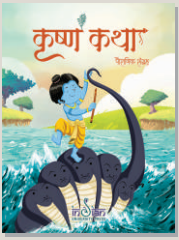

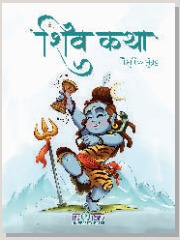

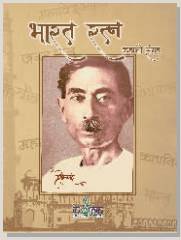

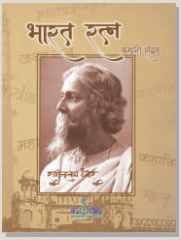

indianuniversitypress

Cover Design - andaaj

Indian University Press द्वारा प्रकाशित राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) एवं राष्ट्रीय पाठ्यचर्या (NCF) की अनुशंसाओं के अनुरूप हिंदी पाठ्यपुस्तकें, हिंदी जगत के प्रसिद्ध साहित्यकारों के कहानी संग्रह, धार्मिक एवं पौराणिक कथा संग्रह अवश्य पढ़ें।

हिंदी उन सभी गुणों से अलंकृत है, जिनके बल पर वह विश्व की साहित्यिक भाषाओं की अगली श्रेणी में सभासीन हो सकती है।

— **मैथिलीशरण गुप्त**

indian™
UNIVERSITY PRESS

4712-14/21, Dayanand Marg, Daryaganj, New Delhi-110002.

+91 90-5500-6600 | www.indianuniversitypress.com | info@indianuniversitypress.com